वीर-स्तुति

— उपाध्याय अमरमुनि

सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा

सन्मति - साहित्य - रत्न - माला : रत्न ६

वीर-स्तुति

उपाध्याय अमरमुनि

सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा

पुस्तक :
वीर-स्तुति

सम्पादक :
उपाध्याय अमरमुनि

संस्करण :
चतुर्थ

मूल्य :
एक रुपया पचीस पैसे

सन् :
३ सितम्बर १९८१, महापर्व पर्युषण

प्रकाशक :
सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा
लोहामण्डी, आगरा
पिन : २८२००२
शाखा : वीरायतन
राजगृह – ८०३ ११६ (बिहार)

मुद्रक :
वीरायतन मुद्रणालय, राजगृह

दो बोल

यह वीर स्तुति है। भगवान् महावीर की महत्ता का एक बहुत सुन्दर उज्ज्वल चित्र, जो उन्हीं के एक महान् ज्ञानी एवं संयमी शिष्य गणधर श्री सुधर्मा स्वामी के द्वारा उपस्थित किया गया है।

भगवान् महावीर कौन थे? उनमें ऐसी क्या विशेषता थी, जो उनका स्मरण करें ? क्या आज के इस इतिहास प्रधान युग में भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है ? ढ़ाई हजार वर्ष पहले भारत का क्या चित्र था ? धर्म के नाम पर जड़ क्रिया-काण्ड, देवी-देवताओं की पूजा के नाम पर निरीह पशुओं का निर्दय बलिदान, वर्ण-व्यवस्था के नाम पर कुछ मानव देहधारी जीवों का पशुओं से भी गयागुजरा घृणित तिरस्कारमय जीवन, नारी जाति की पराधीनता और हीनता का नंगा-नृत्य। भगवान् महावीर ने भारत की पद-दलित मानवता को ऊँचा उठाया, भारतीय-संस्कृति में नया प्राण उंडेला, अन्ध श्रद्धा के स्थान पर धर्म का विशुद्ध रूप जनता के सामने रखा। उनका उपकार अवर्णनीय है। जिस दिन हम उनके उपकारों को भूला देंगे, उस दिन हम विश्व के प्रांगण में आदमी नहीं, पशु के रूप में खड़े होंगे।

अपने महापुरुषों की स्मृति, हमें नया जीवन, नया प्राण अर्पण करती है। उनके गुणों का गान, हमारे अंधकारमय जीवन में प्रकाश की उज्ज्वल-समुज्ज्वल किरणें फेंकता है। उनकी स्तुतियाँ हमारे हृदय की चिर मलिनता को धोकर साफ कर देती हैं। लोग पूछते हैं—भगवान् का नाम लेने से क्या लाभ है? लोग कहते हैं—भगवान् की स्तुति करने से पाप कटने में युक्ति क्या है? उत्तर यह है कि हम जिस समय किसी वस्तु का नाम लेते हैं, तो तत्काल हमें उसकी आकृति, उसके गुण और उसकी विशेषता आदि का भी स्मरण हो जाता है। जब हम कसाई शब्द का उच्चारण करते हैं, तब हमारे मानसिक नेत्रों के सामने एक ऐसे निम्न श्रेणी के व्यक्ति का गंदा चित्र अंकित हो जाता है—जिसकी लाल-लाल आँखें हैं, काला शरीर है, हाथ में छुरा है और बड़ा भयकर क्रूर स्वभाव है। और वेश्या कहते ही हमारे हृदय-पट पर वेश्याके भोग-विलासमय जीवन वाली नारकीय मूर्ति अंकित हो जाती है। इसके विपरीत किसी अच्छे सद्गुणी सन्त या गृहस्थ का नाम आता है, तो हृदय किसी और ही अलौकिक भावों में बहने लगता है। अस्तु, इसी प्रकार जब हम भगवान्

का नाम लेते हैं, तो सहसा हमारे चित्त में भगवान् के दिव्य रूप और अलौकिक गुणों की स्मृति जागृत हो जाती है। भगवन्नाम-स्मरण से चित्त अनायास ही भगवदाकार होने लगता है। भगवदाकार चित्त में, प्रभु के प्रेम से भरे हुए स्वच्छ हृदय में, भला पाप-ताप के लिए फिर स्थान ही कहाँ रहता है? जन्म-जन्म के पापों को नष्ट करने के लिए भगवत्स्तुति भी एक अमोघ औषधि है। भगवान् का स्तवन, भगवान् का गुण-कीर्तन हमारी सोई हुई सद्वृत्तियों को सहसा जागृत कर देता है। **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** का अमर सिद्धांत न कभी मरा है और न कभी मरेगा। जो जैसी भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है।

वीर-स्तुति इन्हीं उपर्युक्त भावनाओं को लक्ष्य में रखकर भक्त जनता के समक्ष आ रही है। इन पंक्तियों के लेखक ने हिन्दी पद्यानुवाद और हिन्दी भावार्थ के रूप में अपनी तुच्छ सेवा भी साथ जोड़ दी है। मैं समझता हूँ, यह पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं है, किन्तु हृदय की भक्ति भावना का ही व्यक्तिकरण है। भगवान् सुधर्मा की अमर कृति के पाठ के साथ-साथ यदि कुछ सेवा मेरे टूटे-फूटे शब्दों से भी ली जाएगी, तो मैं भक्त पाठकों का कृतज्ञ होऊँगा।

जून १९६५, — **उपाध्याय अमरमुनि**

प्रकाशकीय

राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्री अमरसुनिजी द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित वीर-स्तुति का यह चतुर्थ संस्करण जनता के कर-कमलों में समर्पित करते हुए हमें महान् हर्ष है। प्रस्तुत संस्करण उपाध्यायश्रीजी द्वारा रचित विक्रमाब्द १९८७ और विक्रमाब्द २००३ के दोनों पद्यानुवाद दे दिए गए हैं। कुछ पाठकों को पुराना अनुवाद पसंद था, तो कुछ को नवीन। अतः प्रस्तुत पुस्तक में दोनों को ही रख दिया गया है। पाठक अपनी रुचि के अनुसार, कोई-सा भी पढ़ सकते हैं। दूसरी विशेषता यह यह है कि प्रस्तुत संस्करण में उपाध्यायश्रीजी द्वारा रचित महावीराष्टक स्तोत्र भी दे दिया गया है। आशा है, पाठक इससे अधिक से अधिक लाभ उठाएँगे।

ओमप्रकाश जैन
मन्त्री
सन्मति ज्ञान पीठ

अस्वाध्याय

प्रातःकाल, मध्याह्न काल, संध्याकाल और मध्यरात्रि—ये चार संध्याएँ दो घड़ी तक। आषाढ़ शुक्ला १५, श्रावण वदी १। भाद्रपद शुक्ला १५, आश्विन वदी १। आश्विन शुक्ला १५, कार्तिक वदी १।

औदारिक शरीर-सम्बन्धी १० अस्वाध्याय—अस्थि-हड्डी, मांस, रक्त, विष्ठा आदि अशुचि, पास का जलता हुआ मसान, चन्द्र-ग्रहण, सूर्य ग्रहण, राजा आदि देश के प्रधान एवं प्रमुख अधिकारी की मृत्यु, संग्राम, धर्म स्थान में मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यन्च का मृत कलेवर।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय— उल्कापात (तारा टूटना), दिशाओं का लाल होना। चातुर्मास को छोड़कर मेघ की गर्जना और बिजली चमकना। बादलों के न होने पर भी आकाश में सुनाई देनेवाली गर्जना। शुक्ल और कृष्णपक्ष के प्रारंभ की तीन रात्रि तक का संध्या काल, एक पहर पर्यन्त। आकाश में यक्ष जैसी आकृति। श्वेत और कृष्ण रंग की धुन्ध। आँधी आदि के होने से धूल-वृष्टि।

कालिक सूत्र आचारांग, सूत्रकृतांग आदि दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे पहर में नहीं पढ़ने चाहिए।

नमो दुर्वाररागादि-वैरि-वार-निवारिणे ।
अर्हते योगि-नाथाय महावीराय तायिने ।।

— आचार्य हेमचन्द्र

वीर-स्तुति

पुच्छिस्सुणं समणा माहणा य,
अगारिणो या पर-तित्थिया य।
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु,
अणेलिसं साहु-समिक्खयाए ॥१॥

गुरुदेव मुझ से पूछते हैं शुद्ध-संयम-संग्रही।
ब्राह्मण गृहस्थाश्रम-निवासी बौद्ध आदि मताग्रही॥
वह कौन है, जिसने बताया पूर्णतत्त्व विचार कर।
तुलना-रहित सद्धर्म, जग का सर्वथा कल्याणकर॥१॥

साधुजन, ब्राह्मण, गृहस्थित लोग मिलते जब कभी;
पूछते हैं अन्य मत के मानने वाले सभी।
कौन है वह सत्पुरुष ? जिसने कि निश्चय ज्ञान कर;
पूर्ण अनुपम धर्म बतलाया जगत - कल्याण - कर ॥१॥

आर्य जम्बूस्वामी ने गुरुदेव सुधर्मा स्वामी गणधर से पूछा कि भगवन् ! मुझसे प्रायः श्रमण-साधु, ब्राह्मण, गृहस्थ एवं बौद्ध आदि अन्य मतों के मानने वाले सज्जन प्रश्न किया करते हैं कि जिसने अपने निर्मल ज्ञान के द्वारा अच्छी तरह स्वतंत्र रूप से निश्चय कर; विश्व का पूर्ण रूप से कल्याण करने वाले अनुपम धर्म (अहिंसा आदि) का कथन किया है, वह महापुरुष कौन है ? कैसा है ?

कहं च नाणं कह दंसणं से,
सीलं कहं नाय-सुतस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खु! जहातहेणं,
अहासुतं ब्रूहि जहा णिसंतं ॥२॥

उस ज्ञातनन्दन वीर का कैसा विशदतर ज्ञान था?
कैसा सुदर्शन था तथा कैसा चरित्र महान था?
अच्छी तरह से जानते हो आप तो गुरुवर! सभी।
जैसा सुना, निश्चय किया, वैसा कहो मुझसे अभी ॥२॥

ज्ञातनन्दन वीर का कैसा विलक्षण ज्ञान था?
और दर्शन-शील कैसा शुद्ध था, असमान था?
आप भगवन्! जानते हैं ठीक-ठीक बताइए,
सुना, निश्चय किया, वह मर्म सब समझाइए ॥२॥

आर्य जम्बूस्वामी ने गुरुदेव श्रीसुधर्मास्वामी से पुनः प्रार्थना की कि—गुरुदेव! ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के सम्बन्ध में आप खूब अच्छी तरह जानते हैं। अस्तु, यह बताने का अनुग्रह कीजिए कि भगवान महावीर का ज्ञान कैसा था, दर्शन कैसा था, और शील-आचार कैसा था? आपने जैसा सुना और निश्चय किया हो, तदनुसार बताने की कृपा करें।

खेयन्नए से कुसले महेसी,
अणंतनाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खु-पहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥३॥

श्री वीर आत्म-स्वरूप के ज्ञाता तथा खेदज्ञ थे।
दुष्कर्म-कुश-नाशक, महर्षि अनंत-दर्शक विज्ञ थे॥
सबसे अधिक यशवंत, लोचन मार्ग-संस्थित जानिए।
उनके बताए धर्म को, उनकी धृती को देखिए॥३॥

आत्म-दर्शी खेद के ज्ञाता, महामुनि वीर थे,
कर्मदल के नाश करने में कुशल, अतिधीर थे।
ज्ञान-दर्शन था अनन्त, अनन्त कीर्ति-वितान था,
नयन-पथ-गत लोक-पति का धर्म, धैर्य महान था॥३॥

आर्य जम्बूस्वामी के प्रश्न पर श्रीसुधर्मास्वामी गणधर ने उत्तर दिया—भगवान महावीर संसारी जीवों के दुःखों के वास्तविक स्वरूप को जानते थे, क्योंकि उन्होंने उस कर्मविपाकजन्य दुःख को दूर करने का यथार्थ उपदेश दिया है। आत्मा के सच्चिदानन्दमय सत्यस्वरूप के द्रष्टा थे। कर्मरूपी कुश को उखाड़ फेंकने में कुशल थे, महान ऋषि थे, अनन्त पदार्थों के ज्ञाता-द्रष्टा थे, और अक्षय यशवाले थे। भगवान का त्यागमय जीवन जनता की आँखों के सामने स्पष्ट खुला हुआ था। अथवा चक्षुःपथस्थित थे, अर्थात् आँखों के समान हित-अहित—अच्छे-बुरे मार्ग के दिखानेवाले थे। भगवान की महत्ता जानने के लिए उनके बताए हुए जन-कल्याणकारी धर्म को तथा संयम की अखण्ड दृढ़ता को देखना चाहिए।

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्च-णिच्चेहि समिक्खपन्ने,
दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥४॥

उस प्राज्ञने ऊँची अधः तिरछी दिशा में जीव जो :
जंगम व स्थावर भेद से संसार में हैं व्याप्त जो ॥
अच्छी तरह से जान उनको नित - अनित के रूप से।
वर्णन किया वर दीप-सम सद्धर्म का सम-भाव से ॥४॥

विश्व के त्रस और स्थावर जीव सब निज ज्ञान में,
देखकर, सिद्धान्त नित्य - अनित्य का रख ध्यान में।
वीर स्वामी ने अहिंसा धर्म का वर्णन किया,
द्वीप-सम तिहुँ-जग-हितकर साम्य तत्त्व बता दिया ॥४॥

भगवान महावीर ने ऊपर, नीचे, और तिरछे तीनों लोकों में जो भी त्रस और स्थावर जीव हैं, सबको द्रव्य की दृष्टि से नित्य और पर्याय की दृष्टि से अनित्य बताया है। अतएव भगवान का यह अनेकान्तवाद की मुद्रा से अंकित श्रेष्ठ अहिंसा धर्म, संसार सागर में डूबते हुए असहाय प्राणियों को समुद्र में द्वीप--टापू की तरह समानभाव से आश्रय देने वाला है।

टिप्पणी—'दीव' का संस्कृतरूप दीप भी होता है। इस दिशा में यह अर्थ करना चाहिए—"भगवान का अहिंसा-धर्म अज्ञान अन्धकार में भटकने वाले प्राणियों को दीपक के समान प्रकाश देता है और निरापद बनाता है।"

प्रस्तुत सूत्र में त्रस और स्थावर शब्द आए हैं, उनमें पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव स्थावर कहलाते हैं, और शेष द्वीन्द्रिय आदि संसारी जीव त्रस हैं।

जैन-धर्म आत्मा को नित्य और अनित्य रूप से उभयात्मक मानता है। जीव-स्वरूप द्रव्य की दृष्टि से आत्मा नित्य है। क्योंकि मूल स्वरूप से आत्मा का कभी नाश नहीं होता, वह अजर-अमर है। परन्तु पर्याय अर्थात् परिवर्तन की दृष्टि से आत्मा अनित्य भी है। आत्मा मनुष्य, पशु आदि शरीर के नाश की दृष्टि से अनित्य है। शरीर का नाश पर्याय की दृष्टि से आत्मा का नाश समझा जाता है। शरीर के नाश से आत्मा पीड़ा भी पाता है, अस्तु अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए आत्मा को न तो सांख्य एवं वेदान्त के अनुसार सर्वथा कूटस्थ नित्य ही मानना चाहिए और न बौद्ध धर्म के अनुसार बिल्कुल अनित्य क्षण-भंगुर ही। सर्वथा नित्य पक्ष में परिवर्तन न होने से आत्मा का परलोक आदि सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार सर्वथा अनित्य पक्ष में भी क्षणिक आत्मा का परलोक आदि कैसे सिद्ध होगा, चूंकि कर्म करने वाला आत्मा तो क्षणभर में ही समाप्त हो गया। अतः परलोक में कौन कर्म-फल भोगेगा? अतः जैन-धर्म का मार्ग नित्य और अनित्य दोनों के समन्वय में है, एकान्त में नहीं। यह जैन-धर्म का स्याद्वाद है।

से सव्वदंसी अभिभूय नाणी,
निरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व-जगंसि विज्जं,
गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥५॥

वे सर्वदर्शी रिपुजयी सद्ज्ञान के आगार थे।
निर्दोष चारित्री, अचल स्वस्थित परम अविकार थे ॥
संसार में सबके शिरोमणि, तत्त्वज्ञानी ईश थे।
भय-मुक्त, आयुष के अबन्धक, ग्रन्थ-मुक्त, मुनीश थे ॥५॥

सर्वदर्शी सर्वज्ञानी जिन बने कलि जीत कर,
पूर्ण-शुद्ध-चारित्र, आत्म-स्वभाव में रत धीर-वर।
लोक में सब से अनुत्तर थे सुधी, अपरिग्रही,
सर्वविध-भय-शून्य, आयुष्कर्म का बन्धन नहीं ॥५॥

भगवान् महावीर त्रिकालवर्ती सब पदार्थों के ज्ञाता और द्रष्टा थे, काम-क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं को जीतकर केवल ज्ञानी बने थे, निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, अटल वीर पुरुष थे, अपने आत्म स्वरूप में स्थिर भाव से लीन थे, अर्थात् निर्विकार थे, लोक में सबसे उत्कृष्ट अध्यात्म-विद्या के पारगामी थे, सब प्रकार से परिग्रह के त्यागी थे, निर्भय थे, सदा के लिए मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अजर-अमर हो गए थे। उन्होंने पुनर्जन्म के लिए फिर आयुष् का बन्ध नहीं किया था।

से भूइपन्ने अणिए अचारी,
ओहंतरे धीरे अणंत-चक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सूरिए वा,
वइरोयणिंदे व तमं पगासे ॥६॥

श्री वीर जग-रक्षाव्रती अनियत विहारी थे प्रखर ।
भवसिन्धु-तीर्ण अनन्त-ज्ञानी धैर्य-धारी थे प्रवर ॥
सुविशुद्ध तप के श्रेष्ठकर्ता सूर्य - पावक - तेजसम ।
सद्ज्ञान का सुप्रकाश कीना नष्ट कर अज्ञानतम ॥६॥

श्रेष्ठमति मंगलमयी, प्रतिबन्ध-शून्य विहार था,
पार भवसागर किया, अविचल अदम्य विचार था ।
ज्ञान-ज्योति अनन्त सूर्य-समान तेजस्वी प्रवर,
वर विरोचन-तुल्य चमके अन्धकार विनाश कर ॥६॥

भगवान महावीर की प्रज्ञा विश्व का मंगल करनेवाली थी । उनका विहार सब प्रकार के सांसारिक प्रतिबन्धों से रहित था । वे संसार सागर को तैरने वाले, सब प्रकार के उपसर्ग और परिषहों को समभाव से सहन करने में धीर, अनन्त पदार्थों के ज्ञाता, सूर्य के समान अखण्ड तेजस्वी, और वैरोचन इन्द्र अथवा प्रचंड वैरोचन अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार को नष्ट कर ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे ।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं,
नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदे व देवाण महाणुभावे,
सहस्स नेता दिवि णं विसिट्ठे ॥७॥

ऋषभादि जिन-वर्णित अतुल शिव-धर्म के नेता महा ।
मुनिनाथ, काश्यप-वंश-दीपक, दिव्य-ज्ञानी थे अहा ॥
सुरलोक में सुर-वृन्द में प्रभु शक्र शोभित है यथा ।
मुनि-वृन्द में अति श्रेष्ठ नायक वीर शोभित थे तथा ॥७॥

श्री ऋषभ जिन आदि-चालित श्रेष्ठ धर्म विधान के,
नेता, मनन-कर्ता, महासगर अलौकिक ज्ञान के ।
गोत्र से काश्यप, अतीव प्रभावशाली इन्द्र-सम,
देव-गण के पूज्य नेता वीर थे उत्कृष्ट-तम ॥७॥

भगवान महावीर ने श्री ऋषभ आदि पूर्व तीर्थंकरों के द्वारा प्रचारित अहिंसा धर्म का पुनरुद्धार किया था। वे मनन-शील विलक्षण ज्ञानी थे। स्वर्ग लोक में जिस प्रकार इन्द्र असंख्य देवों पर नेतृत्व करता है, उसी प्रकार वीर प्रभु भी अपने युग के एक मात्र सर्व-प्रधान धर्म के नेता थे। अथवा धर्म-साधना करने वाले साधकों के पथ-प्रदर्शक नेता थे।

से पन्नया अक्खय-सायरे वा,
महोदही वा वि अणंतपारे।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के,
सक्के व देवाहिवई जुइमं ॥८॥

निर्मल अनंत - अपार - संभूरमण सागर है यथा।
श्री वीर भी वर-बुद्धि से अक्षय पयोनिधि थे तथा॥
भव-बन्धनों से मुक्त, भिक्षु कषाय-मल से दूर थे।
देव-स्वामी शक्र-सम द्युतिमान, विजयी शूर थे॥८॥

जिस प्रकार अपार सागर वह स्वयंभूरमण है,
त्यों अखिल विज्ञान में वह वीर सन्मति श्रमण है।
कर्म-मुक्त, कषाय से निर्लिप्त, धन्य पवित्रता,
देव-पति श्री शक्र-सम द्युति की अनन्त विचित्रता ॥८॥

भगवान अनुपम हैं। संसार का कोई भी पदार्थ उनकी बराबरी में नहीं आ सकता। फिर भी परिचय की दृष्टि से स्वयंभूरमण सागर और इन्द्र की उपमा दी गई है —

जिस प्रकार स्वयंभूरमण महासागर अपार एवं निर्मल है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी पूर्ण शुद्ध अनन्त ज्ञान के अक्षय सागर थे। क्रोध, मान आदि चार कषाय से सर्वथा रहित थे। वासनाजन्य कर्मों के बन्धन से मुक्त थे। जिस प्रकार देवताओं का स्वामी इन्द्र प्रभावशाली है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी महान् तेजस्वी एवं महान् प्रभावशाली थे।

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए,
सुदंसणे वा नग-सव्व-सेट्ठे ।
सुरालए वासि - मुदागरे से,
विरायए णेग - गुणोववेए ॥६॥

वे वीर्य से प्रतिपूर्ण बल-शाली जगत में थे सही ।
सब पर्वतों में श्रेष्ठतर जैसे सुदर्शन है सही ॥
आनंददाता देवगण को यह सुमेरु है यथा ।
नानागुणालंकृत महाप्रभु वीर जिनवर थे तथा ॥६॥

शक्ति से प्रतिपूर्ण भूधर-श्रेष्ठ मेरु - समान थे,
देव - गण को मोदकारी, दिव्य-ज्योति-निधान थे ।
सत्य, शील, दया, क्षमा, धृति आदि गुण-भंडार थे,
शुद्ध पद की भव्य शोभा के प्रवर अवतार थे ॥६॥

वीर्यान्तराय कर्म का क्षय करने से भगवान महावीर अनन्त शक्ति वाले थे । जिस प्रकार सुमेरु पर्वत संसार के सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, स्वर्गवासी देवों के लिए हर्षोत्पादक है, अनेकानेक मनोहर गुणों से युक्त है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी संसार में सबसे श्रेष्ठ, प्राणिमात्र के लिए आनन्दकारी एवं सत्य शील आदि अनन्त गुणों के अक्षय निधि थे ।

सयं सहस्साण उ जोयणाणं,
तिकंडगे पंडग - वेजयंते।
से जोयणे णव - णवते सहस्से,
उदधुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ॥१०॥

जिस मेरु गिरि की उच्चता का लक्ष योजन मान है।
पंडगाभिध वन ध्वजायुत तीन काण्ड महान हैं॥
निन्याणवें हजार योजन तुंग अम्बर में खड़ा।
है सहस्र योजन एक पूरा मेदिनी-तल में गड़ा॥१०॥

लाख योजन का महीधर मेरु जग-विख्यात है,
तीन काण्डों से रुचिर, पण्डक ध्वजा-सम ज्ञात है।
भूमि से नव-नवति योजन सहस्र ऊँचे लोक में,
और एक हजार योजन पूर्ण नीचे लोक में॥१०॥

सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। निन्यानवे हजार योजन भूमि से ऊपर आकाश में है, और एक हजार योजन नीचे भूमि के गर्भ में है। इसके तीन काण्ड हैं, सबसे ऊपर के काण्ड में पण्डक वन है, जो ध्वजा के समान बहुत सुन्दर मालूम होता है।

टिप्पणी— सुमेरु पर्वत ऊर्ध्व-ऊँचा, अधः-नीचा और मध्य तीनों लोक में अवस्थित है, भगवान का प्रभाव भी तीन लोक में व्याप्त था।

सुमेरु के भौम, सुवर्ण और रजत ये तीन काण्ड (भाग) हैं, भगवान भी सम्यक्-दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्न-त्रय से युक्त थे।

पुट्ठे नभे चिट्ठइ भूमि-वट्ठिए,
जं सूरिया अणु-परिवट्टयंति।
से हेमवन्ने बहुनंदणे य,
जंसी रतिं वेदयती महिंदा ॥११॥

वह भूमि को आकाश को है स्पर्श कर ठहरा हुआ।
चहुं ओर ज्योतिषगण फिरे फेरी सदा देता हुआ॥
है नंदनादिक चार वन से युक्त कान्ति सुवर्ण-धर।
अनुभव करें रति का सदा देवेन्द्र जिस पर आनकर॥११॥

भूमि-तल से गगन-तल को स्पर्श करता है खड़ा,
सूर्य - चन्द्र प्रदक्षिणा करते, लगे सुन्दर बड़ा।
नन्दनादिक वन मनोहर, स्वर्ण जैसी कान्ति है,
स्वर्ग-पति देवेन्द्र भी पाता यहाँ विश्रान्ति है॥११॥

सुमेरु पर्वत ऊपर आकाश को और नीचे भूमि को स्पर्श करके खड़ा हुआ है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहगण अविराम गति से चारों ओर प्रदक्षिणा करते रहते हैं। स्वर्ण के समान सुन्दर कान्ति है और नन्दन आदि वनों से सुशोभित है। साधारण देवताओं की तो बात ही क्या, स्वयं इन्द्र भी सुमेरु पर्वत पर आकर विश्रान्ति, सुख प्राप्ति करते हैं।

टिप्पणी—भगवान महावीर के अहिंसा और सत्य आदि के सिद्धान्त सुमेरु के समान सदैव ऊर्ध्वमुखी रहे हैं।

महामंडलेश्वर सम्राट् भी भगवान के चारों ओर प्रदक्षिणा लगाया करते थे और उपदेश श्रवण करने के लिए सदा लालायित रहते थे।

सुमेरु के समान भगवान के दिव्य शरीर का वर्ण भी सुवर्ण जैसा कान्तिवाला एवं पीतवर्ण का था।

भगवान के चरणों में प्राणिमात्र को आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होता था। अधिक क्या, स्वर्गवासी इन्द्रों को भी भगवान की सेवा में आकर ही शान्ति प्राप्त होती थी। भगवान अपने युग में विश्व-शान्ति के एक मात्र केन्द्र थे।

से पव्वए सद्द-महप्पगासे,
विरायती कंचण-मट्ठ-वण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्व-दुग्गे,
गिरीवरे से जलिए व भोमे ॥१२॥

वह मेरुपर्वत किन्नरों के गान से नित गूंजता।
मल-मुक्त कांचन तुल्य वह देदीप्यमान सुशोभता॥
मेखला से दुर्ग सारे पर्वतों में श्रेष्ठ है।
भूदेश-तुल्य विचित्र शोभावान अति उत्कृष्ट है॥१२॥

तप्त स्वर्ण-समान पीला वर्ण शोभावान है,
शब्द-गुंजन का जहाँ विस्तार दिव्य महान है।
विश्व के सब पर्वतों में श्रेष्ठतम गिरिराज है,
दीप्त भौम-समान उज्ज्वल तेज का शुभ राज है॥१२॥

सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में से देवताओं का मधुर संगीत-स्वर दूर-दूर तक गूँजता रहता है। तपाये हुए स्वर्ण जैसी उज्ज्वल कान्ति बड़ी मनोहर लगती है। सुमेरु सब पर्वतों में श्रेष्ठ है और ऊँची-नीची मेखलाओं के कारण दुर्गम है। मंगल-ग्रह के समान अतीव उज्ज्वल कान्ति वाला है।

टिप्पणी - सुमेरु की कन्दरा-गत गम्भीर ध्वनि के समान भगवान महावीर की वाणी भी अतीव ओजस्विनी दिव्य-ध्वनि के रूप में प्रगट होती थी। वह दूर-दूर तक बैठे हुए श्रोताओं को सुनाई देती थी और उनके अन्तःकरण पर अपना अमिट प्रभाव डाल देती है।

सुमेरु, मेखलाओं के कारण दुर्गम है और भगवान महावीर भी नय-निक्षेप आदि की भंगावलियों के कारण तत्त्व चर्चा के क्षेत्र में वादियों के द्वारा सर्वथा अजेय थे। अनेकान्त-वाद का सिद्धांत भला कहीं पराजित होता है ?

भौम का एक अर्थ मंगल ग्रह है, दूसरा अर्थ पृथ्वी परिणाम भी होता है। इस प्रसंग में ज्वलित भौम का अभि-प्राय यह होगा कि जिस प्रकार पृथ्वी अनेक तेजोमय औषधियों से देदीप्यमान रहती है, उसी प्रकार मेरु पर्वत भी अनेक वृक्ष-समूह से, देदीप्यमान रहता है, चमकता रहता है। भगवान भी मेरु के समान अनन्तानन्त सद्गुणों से प्रकाशमान हैं।

महीइ मज्झंमि ठिये णगिंदे,
पन्नायते सूरिय-सुद्ध-लेसे।
एवं सिरीए उ स भूरि-वन्ने,
मणोरमे जोइय अच्चिमाली ॥१२॥

भूमध्य में स्थित पर्वतेश्वर लोक में प्रज्ञात है।
मार्तण्ड-मण्डल तुल्य शुद्ध सुतेज-युत विख्यात है॥
पूर्वोक्त शोभावान बहुविध वर्ण से अभिराम है।
दर्शक-मनोहर सूर्य-सम उद्द्योत-कर छवि-धाम है॥१२॥

भूमि-तल के मध्य में स्थित है नगेन्द्र सुमेरुवर,
सूर्य-जैसा शुद्ध तेजोराशि से युत अति प्रखर।
क्या मनोहर रंग मणियों का विचित्रित सोहता?
दश दिशा-द्योतक किरण का पुंज जग को मोहता॥१२॥

सुमेरु पर्वत ठीक भूमण्डल के बीच में है। वह पर्वतों का राजा, सूर्य के समान अतीव दिव्य कान्ति वाला है। नाना प्रकार के रत्नों के कारण विचित्र वर्णों की प्रभा से युक्त है। उसमें से सब ओर उज्ज्वल किरणें निकलती रहती हैं, जो दश दिशाओं को अपने आलोक से उद्भासित करती हैं।

टिप्पणी—जिस प्रकार सुमेरु भूमण्डल के बीच में है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी धर्म साधकों की भावनाओं के मध्य बिन्दु अर्थात् केन्द्र थे।

सुमेरु पर्वतों का राजा है, तो भगवान महावीर त्यागी, तपस्वी साधु और श्रावकों के राजा अर्थात् नेता थे। भगवान की अधिनायकता में हजारों साधक वासनाओं पर विजय प्राप्त कर बड़े आनन्द के साथ मोक्ष-साम्राज्य के अधिकारी बने।

सुमेरु अनेक प्रकार के रत्नों की प्रभा के कारण रंग-बिरंगा लगता है और भगवान महावीर भी सत्य शील, क्षमा, ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुणों के कारण अनन्त रूप थे।

भगवान के ज्ञान का प्रकाश लोक-अलोक में सब ओर फैला हुआ है। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं, जो उनके अनन्त ज्ञान में उद्भासित न होता हो।

सुदंसणस्से व जसो गिरिस्स,
पवुच्चइ महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे नाय-पुत्ते,
जाई-जसो-दंसणनाणसीले ॥१४॥

जैसे महापर्वत सुदर्शन मेरु का यश लोक में।
तैसे जगद् - गुरु वीर का करते सुयश हैं लोक में॥
ऐसे सदुपमायुक्त मुनिवर ज्ञात-पुत्र महान थे।
सद्ज्ञान, जाति, सुकीर्ति, दर्शन, शील में असमान थे ॥१४॥

क्या अधिक कहना सुदर्शन मेरु को जो दीप्ति है,
वीर स्वामी को वही उज्ज्वल मनोहर कीर्ति है।
ज्ञातपुत्र महातपोधन वीर सर्व — महान थे,
ज्ञान, दर्शन, शील, यश, श्रम जाति में असमान थे ॥१४॥

जिस प्रकार संसार में पर्वतों का राजा सुमेरु यशस्वी माना गया है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी तीन लोक में महातिमहान यशस्वी थे। धर्म-साधना में अतीव उग्र श्रम करने वाले ज्ञातपुत्र महावीर जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील आदि सद्गुणों में सब से श्रेष्ठ थे।

टिप्पणी—भगवान महावीर के वर्धमान, सन्मति आदि अनेक नाम थे, उनमें से ज्ञातपुत्र भी एक नाम था, जो उनके राजवंश के कारण बोला जाता था। भगवान महावीर ने काश्यप वंश के अन्तर्गत क्षत्रियों की ज्ञात शाखा में जन्म लिया था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान राहुलजी की शोध के अनुसार आजकल भी बिहार में ज्ञात जाति है, जो अब जथरिया के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान महावीर के भक्त भारत की इस प्राचीन महाजाति के साथ, क्या अब फिर अपना पुराना सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

ज्ञातृ जाति आजकल कहाँ और कैसे है, इसके लिए राहुलजी की विचार-धारा इस प्रकार है—

"ज्ञातृ जाति आज भी वैशाली नगरी (जिला मुजफ्फरपुर के अन्तर्गत बसाढ़) के आस-पास जथरिया भूमिहार जाति के रूप में विद्यमान है। 'जथरिया' 'ज्ञातृ' शब्द का ही अपभ्रंश मालूम होता है। ज्ञातृ = ज्ञातर, जातर, जतरिया, जथरिया का क्रम-विकाश कुछ असंगत भी नहीं है।

भगवान महावीर का गोत्र काश्यप था। जथरिया जाति का गोत्र भी काश्यप ही है। जथरिया जाति के नाम सिंहान्त हैं, जो क्षत्रिय होने का सूचक है। आज भी जथरिया जाति में बहुत से जमींदार और राजा हैं। ज्ञातृ जाति, लिच्छवी क्षत्रियों की ही एक सुप्रसिद्ध शाखा थी।"

गिरीवरे वा निसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयाययाणं।
तओवमे से जग भूइ-पन्ने,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने ॥१५॥

जैसे निषध है श्रेष्ठ सारे दीर्घ पर्वत-वृन्द में।
जैसे रुचक है श्रेष्ठ सारे वर्तुलाचल-वृन्द में॥
इसही तरह से वीर हैं जग में प्रवर मति के धनी।
सब बुद्धिमानों ने कहा मुनियों में सर्वोत्तम मुनी ॥१५॥

दीर्घ पर्वत-जाति में ज्यों निषध की है श्रेष्ठता,
और वलयाकार गिरि में रुचक की है ज्येष्ठता।
वीर स्वामी त्यों जगत में श्रेष्ठ प्रज्ञावान थे,
विश्व के मुनिवृन्द में सब भांति पूज्य महान थे ॥१५॥

जिस प्रकार दीर्घाकार (लंबे) पर्वतों में निषध, और वलयाकार (चूड़ी के समान गोल) पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ माना गया है, उसी प्रकार अखिल चराचर विश्व के ज्ञाता अनन्त-ज्ञानी भगवान महावीर को ज्ञानी पुरुषों ने त्यागी ऋषि-मुनियों में श्रेष्ठ कहा है।

अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता,
अणुत्तरं झाणवरं झियाइ ।
सुसुक्क-सुक्कं, अपगंड-सुक्कं,
संखिंदु-एगंतवदात-सुक्कं ॥१६॥

संसार-तारक धर्म का उपदेश दे संसार को।
ध्याते सुनिर्मल ध्यान प्रभु, कर दूर चित्त-विकार को॥
वह ध्यान निर्मलता-विषय में श्वेत से भी श्वेत है।
जल-फेन, शंख, शशांक के सम अत्यधिक सुश्वेत है॥१६॥

कर प्रकाशित सर्व-श्रेष्ठ सुधर्म, ध्यान-स्थित हुए,
शुक्ल-ध्यान प्रधान निर्मल ध्यान में अतिरत हुए।
शुक्ल ध्यान अतीव उज्ज्वल श्वेत-स्वर्ण-समान था,
शख-चन्द्र-समान था, मल का न एक निशान था॥१६॥

भगवान महावीर ने सर्व-प्रधान अहिंसा धर्म का संसार को उपदेश देकर सब ध्यानों में श्रेष्ठ शुक्ल-ध्यान की साधना की। भगवान का वह शुक्ल-ध्यान (आत्म-चिन्तन की शुद्ध धारा) अर्जुन सुवर्ण, जल-फेन, शंख और चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से शुक्ल निर्मल था।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी,
असेस-कम्मं स विसोहइत्ता ।
सिद्धिंगते साइमणंतपत्ते,
नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥१७॥

निःशेष कर्म-समूह को पूरी तरह से नष्ट कर ।
सर्वातिवर लोकाग्र में स्थित हो गए हैं साधुवर ॥
सद्ज्ञान दर्शन-शील द्वारा शुद्ध अपने को किया ।
उत्कृष्ट सादि-अनंत मुक्ति स्थान को है पा लिया ॥१७॥

कर्म-मल को पूर्ण विधि से नष्ट कर निर्मल हुए,
लोक में सब से प्रवर लोकाग्र में अविचल हुए ।
ज्ञान, दर्शन, शील का अध्यात्म-पथ अपना लिया,
सादि और अनन्त उत्तम सिद्ध का पद पा लिया ॥१७॥

महर्षि महावीर ने सब कर्मों को सदाकाल के लिए समूल नष्ट करके लोक के अग्रभाग में स्थित सर्व प्रधान, सादि अनन्त, उत्कृष्ट मोक्ष गति को प्राप्त किया । भगवान ने सिद्ध पद की प्राप्ति में अन्य किसी पर भरोसा न रख अपने ही प्रयत्न पर भरोसा किया, फलतः अपने ज्ञान, दर्शन एवं शील के द्वारा कर्म-बन्धन से मुक्ति प्राप्त की ।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा,
जंसी रतिं वेदयती सुवन्ना ।
वणेसु वा नन्दणमाहु सेट्ठं,
नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने ॥१८॥

जैसे सकल तरु-वृन्द में तरु शाल्मली की श्रेष्ठता :
जिस पर सुपर्णकुमार करते प्राप्त नित्य प्रसन्नता ॥
सारे वनों में नन्दनाभिध ही महावन श्रेष्ठ है ।
इसही तरह से वीर, ज्ञान सुशील से सुश्रेष्ठ है ॥१८॥

शाल्मली तरु - जाति में सब भाँति शोभाधाम है,
सुरसुपर्ण कुमार की रति का सुखद विश्राम है ।
काननों में श्रेष्ठ नन्दन वन जगत-विख्यात है,
ज्ञान से, वर शील से त्यों वीर जग-विख्यात है ॥१८॥

वृक्षों में शाल्मली वृक्ष श्रेष्ठ है, जिस पर सुपर्णकुमार जाति के भवनपति देव क्रीड़ा किया करते हैं । संसार के समस्त सुन्दर वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ है, जो सुमेरु पर्वत पर अवस्थित है । अनन्त ज्ञानी भगवान् महावीर भी इसी प्रकार ज्ञान और शील में सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे ।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ,
चंदो व ताराण महाणुभावे।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं,
एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥१६॥

जैसे घनाघन - गर्जना सब शब्द में उत्कृष्ट है।
जैसे कलानिधि चंद्रमा नक्षत्र गण में श्रेष्ठ है॥
जैसे सुगन्धित वस्तुओं में मलय चन्दन श्रेष्ठ है।
तैसे अकामी वीर सारे साधुओं में श्रेष्ठ हैं॥१६॥

मेघ-गर्जन है अनुत्तर शब्द के संसार में,
कौमुदी-पति चन्द्रमा है श्रेष्ठ तारक - हार में।
सब सुगन्धित वस्तुओं में वावना चन्दन प्रवर,
विश्व के मुनि-वृन्द में निष्काम सन्मति श्रेष्ठतर॥१६॥

जिस प्रकार शब्दों में मेघ की गर्जना का शब्द अनुपम है, तारा मण्डल में चन्द्रमा महानुभाव है, सुगन्धित वस्तुओं में मलय अर्थात् वावना चन्दन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार भूमण्डल के समस्त मुनियों में लोक और परलोक की वासना से सर्वथा मुक्त भगवान महावीर श्रेष्ठ थे।

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठं,
नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठं।
खोओदए वा रस-वेजयंते,
तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥२०॥

जैसे स्वयंभू सागरों में श्रेष्ठ कहलाता महा।
सब नागवंशी देवगण में श्रेष्ठ धरणिंद को कहा॥
सारे रसों में इक्षुरस की श्रेष्ठता विख्यात है।
तप-पुंज द्वारा वीर को भी श्रेष्ठता यों ज्ञात है॥२०॥

सागरों में ज्यों स्वयंभू श्रेष्ठ सागर भूमि पर,
देवपति धरणेन्द्र नागकुमार-गण में उच्चतर।
सब रसों में प्रमुख रस है ईख का संसार में,
वीर मुनि त्यों प्रमुख हैं, तप के कठिन आचार में॥२०॥

जिस प्रकार सब समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र प्रधान है, नागकुमार जाति के भवनपति देवों में उनका इन्द्र धरणेन्द्र प्रधान है, सब रसों में ईख का मधुर-रस प्रधान है, उसी प्रकार तपश्चरण की साधना के क्षेत्र में भगवान महावीर सर्व-प्रधान थे।

हत्थीसु एरावणमाहु णायं,
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे,
निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते ॥२१॥

सारे गजों में श्रेष्ठ है गजराज ऐरावत यथा।
पशुओं में निर्भय केशरी नदियों में गंगा है यथा॥
सब पक्षियों में वेणुदेव सुवैनतेय महान है।
निर्वाणवादी वृन्द में प्रभु वीर ही परधान हैं॥२१॥

हाथियों में इन्द्र का गज श्रेष्ठ ऐरावत कहा,
केशरी मृग-वृन्द में, गगा नदी उत्तम महा।
पक्षियों में गरुड़ पक्षी वेणुदेव महान है,
मोक्ष-पथ के नायकों में ज्ञातपुत्र प्रधान हैं॥२१॥

जिस प्रकार हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हाथी मुख्य है, पशुओं में सिंह मुख्य है, नदियों में गंगा नदी मुख्य है, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ पक्षी मुख्य है, उसी प्रकार मोक्ष-मार्ग के उपदेशक नेताओं में ज्ञातपुत्र भगवान महावीर मुख्य थे।

टिप्पणी—उक्त उपमाएँ भगवान के मंगलता, निर्भयता, शुक्लता, पवित्रता स्वतंत्रता आदि सद्गुणों को व्यक्त करती हैं।

जोहेसु णाए जह वीससेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु!
खत्तीण सेट्ठे जह दंत-वक्के,
इसीण सेट्ठे तह वड्ढमाणे !!२२!!

सब शूर-वीरों में अधिकतर विश्वसेन प्रसिद्ध है।
सारे सुगंधित-पुष्प-चय में श्रेष्ठतर अरविंद है।।
सब क्षत्रियों में श्रेष्ठ जैसे दान्तवाक्य सुधीर है।
सब साधुओं में श्रेष्ठ तैसे वीतरागी वीर हैं।।२२।।

शूर वीरों में यशस्वी वासुदेव अपार है,
अखिल पुष्पों में कमल अरविन्द गन्धागार है।
क्षत्रियों में चक्रवर्ती सार्व-भौम प्रधान है,
विश्व के ऋषि-वृन्द में श्री वर्द्धमान महान है।।२२।।

जिस प्रकार वीर योद्धाओं में वासुदेव महान् है फूलों में अरविन्द कमल महान् है, क्षत्रियों में चक्रवर्ती महान् है, उसी प्रकार ऋषियों में वर्द्धमान भगवान महावीर सबसे महान थे।

टिप्पणी—उक्त उपमाएँ भगवान के—शूरता, वीरता, दृढ़ता, सर्व-प्रियता मनोहरता, इन्द्रिय-निग्रहता और भव-भय से रक्षकता आदि, सद् गुणों को प्रकाशित करती हैं।

दाणाण सेट्ठं अभय-प्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयन्ति।
तवेसु वा उत्तम — बंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥२३॥

सम्पूर्ण दानों में अभय सद्-दान ही है श्रेष्ठतर।
निरवद्य सत्य ही सत्य वचनों में कहा है श्रेष्ठतर॥
जैसे तपो में श्रेष्ठता है विश्वविश्रुत शील की।
तैसे जगत में श्रेष्ठता मुनि, ज्ञात नंदन वीर की॥२३॥

भोजनादिक दान में उत्तम अभय का दान है,
सत्य में निष्पाप करुणा-सत्य की ही शान है।
ब्रह्मचर्य महान है तप के अखिल व्यवहार में,
ज्ञातनन्दन हैं श्रमण उत्तम सकल संसार में॥२३॥

जिस प्रकार सब दानों में अभय-दान उत्तम है, सत्यों में पाप-रहित दयामय सत्य उत्तम है, तपों में ब्रह्मचर्य तप उत्तम है, उसी प्रकार तीन लोक में ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर सब से उत्तम थे।

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण-सेट्ठा जह सव्व-धम्मा,
न नायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥२४॥

दीर्घायु वाले देवगण में श्रेष्ठ पंचानुत्तरी।
सारी सभाओं में सुधर्मा श्रेष्ठ है मंगलकरी॥
संसार के सब धर्म वर निर्वाण-पद प्राधान्य है।।
श्री ज्ञात नन्दन वीर-सम ज्ञानी न कोई अन्य है॥२४॥

देव-स्थिति में श्रेष्ठ स्थिति लवसत्तमों की है बड़ी,
स्वर्ग की परिषद् सुधर्मा सब सभाओं में बड़ी।
सर्व धर्मों में अमर निर्वाण का पद श्रेष्ठ है,
ज्ञानियों में वीर से बढ़कर न कोई ज्येष्ठ है॥२४॥

जिस प्रकार सुखमय जीवन की सबसे बड़ी आयु में सर्वार्थ-सिद्ध नामक छब्बीसवें देव लोक के देवताओं की आयु श्रेष्ठ है, सब सभाओं में प्रथम देवलोक के सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, सब धर्मों में निर्वाण (मोक्ष) की ही श्रेष्ठता है, उसी प्रकार ज्ञात पुत्र भगवान महावीर भी ज्ञानियों में सबसे श्रेष्ठ थे अर्थात् उनसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं था।

पुढोवमे धुणइ विगयगेही,
न सण्णिहिं कुव्वइ आसुपन्ने।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥२५॥

भगवान पृथ्वी-तुल्य सर्वाधार निश्चल शक्त थे।
थे कर्म-मल से रहित, आशातीत, संग्रह-मुक्त थे॥
थे सर्वदा उपयोग वाले, भीम भवदधि तैर कर।
संपूर्ण जग-जीवों के रक्षक थे, अपरिमित ज्ञान-धर ॥२५॥

वासनाओं से रहित, भू-तुल्य सर्वाधार थे,
कर्म - रज - नाशक, अमल सन्तोष के भंडार थे।
सर्वदा उपयोग - युत, भवसिन्धु भीषण तैर कर,
वीर अभयंकर अमित ज्ञानी हुए जग-क्षेमकर ॥२५॥

भगवान महावीर पृथ्वी के समान सब जीवों के आधारभूत थे, अथवा पृथ्वी के समान भयंकर उपसर्ग और परीषहरूप कष्टों को समभाव से सहन करने वाले क्षमावीर थे, कर्ममल का नाश करने वाले थे, आशा—तृष्णा से सर्वथा रहित थे। भगवान ने धन-धान्य आदि किसी भी पदार्थ का कभी भी संग्रह नहीं किया। उनका ज्ञान निरन्तर उपयोग-सहित था। महा भयंकर संसार-सागर को तैरकर वीर प्रभु ने अभयंकर (सब प्राणियों को अभय करने वाले) एवं अनन्त ज्ञानी का सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्त किया था।

कोहं च माणं च तहेव मायं,
लोभं चउत्थं अज्झत्थ-दोसा ।
एआणि वंता अरहा महेसी,
न कुव्वइ पाव न कारवेइ ॥२६॥

श्री वीर स्वामी क्रोध को, अभिमान, माया को तथा ।
चौथे भयंकर लोभ को अध्यात्म दोषों को तथा ॥
सारी तरह से त्याग करके हो गए अर्हत्-मुनी ।
खुद पाप ना करते कभी नांही कराते हैं गुणी ॥२६॥

क्रोध, मान, तथैव माया, लोभ का संहार कर
आत्म-दोषों का वमन कर बन गए अरिहन्तवर ।
वीर दिव्य महर्षि थे, जग में उजाला कर दिया,
पाप कृत न किया, न करवाया, न अनुमोदन किया ॥२६॥

संसार में सर्वश्रेष्ठ महर्षि भगवान महावीर क्रोध, मान, माया, और लोभ आदि अन्तरंग दोषों का पूर्णतया त्याग कर अर्हन्त बन गए । भगवान ने पापाचरण न कभी स्वयं किया, न दूसरों से करवाया और न करने वालों का अनुमोदन ही किया ।

किरियाकिरियं वेणइयाण वायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
से सव्व-वायं इति वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीह-रायं ॥२७॥

श्री वीर स्वामी ने क्रियामत, अक्रियामत को तथा।
अज्ञान, विनयक पक्ष को भी जानकर के सर्वथा॥
अन्यान्य भी मत पक्ष सब समझा-बुझा सम्यक्तया।
संयम-क्रिया में जन्म भर तत्पर रहे सम्यक्तया ॥२७॥

वीर स्वामी ने क्रिया अरु अक्रिया के वाद को,
पुनि विनय के वाद को, अज्ञानता के वाद को।
जान कर निष्पक्ष मति से सब स्वयं समझा दिया,
नष्टकर अज्ञान तम, पालन सुचिर संयम किया ॥२७॥

भगवान महावीर ने क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद, अज्ञानवाद, आदि सब प्रकार के मत-मतान्तरों को पहले स्वयं भली-भाँति जाना और फिर जनता को सत्य का वास्तविक मर्म समझाया। भगवान ज्ञान के साथ संयम के भी बड़े उत्कृष्ट साधक थे। अस्तु आपने शुद्ध संयम का जीवन पर्यन्त सर्वथा दोष-रहित परिपालन किया।

से वारिया इत्थि सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्ख-खयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्व वारं॥२८॥

श्रीमत् तपस्वी वीर ने दुख नष्ट करने के लिए।
झट रात्रि-भोजन मैथुनादिक पाप सारे तज दिए॥
इस लोक को, परलोक को अच्छी तरह से जानकर।
सबही तरह सबका निवारण कर दिया शुभ ध्यान धर॥२८॥

रात्रिभोजन, कामिनी के संग का वारण किया,
दुःख के क्षय-हेतु अति ही उग्र तप का पथ लिया।
लोक अरु परलोक की सब वासनाएं छोड़ दीं,
सब प्रकार ममत्व की दृढ़ शृंखलाएँ तोड़ दीं॥२८॥

भगवान महावीर त्याग मार्ग के अत्यन्त कठोर साधक थे, अतएव स्त्री का स्पर्श तक भी नहीं करते थे और न कभी रात को भोजन ही खाते थे। सांसारिक दुःखों की परम्परा का समूल क्षय करने के लिए भगवान ने उग्र तपश्चरण किया था। लोक और परलोक के रहस्य को जानकर भगवान ने सब प्रकार की लोक-परलोक सम्बन्धी वासनाओं का भी पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया।

सोच्चा य धम्मं अरिहन्तभासियं,
समाहितं अट्ठ-पदोवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ,
इंदा व देवाहिव आगमिस्सं ॥२६॥

अर्हन्त-भाषित, अर्थपद से शुद्धतर सम्यक् कथित।
संसार-विश्रुत धर्म को सुनकर सदा जो हों मुदित।
श्रद्धा करें जो धर्म पर वे देवपति हो जायंगे।
आयुष्-कर्म से विमुक्त होकर सिद्ध पद को पायेंगे ॥२९॥

वीर-जिनभाषित, समाहित, अर्थ पद से शुद्धतर,
धर्म पर श्रद्धान रक्खेंगे, सुजन जो श्रवण कर।
कर्ममल से मुक्त हो वे सिद्ध प्रभु बन जायंगे,
स्वर्ग में अथवा सुरेश्वर इन्द्र का पद पायगे ॥२६॥

श्री सुधर्मास्वामी गणधर श्री जम्बूस्वामी से वीर स्तुति का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जो साधक राग-द्वेष के विजेता भगवान महावीर के द्वारा सम्यक् प्रकार से कहे हुए शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से सर्वथा शुद्ध धर्म प्रवचन पर श्रद्धा रक्खेंगे, वे जन्म मरण के बन्धन से रहित होकर सिद्ध-पद प्राप्त करेंगे, अथवा स्वर्ग में देवताओं के राजा इन्द्र बनेंगे।

महावीराष्टक स्तोत्र

: १ :

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्तिध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिता
जगत्-साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः!

जिन्हों की प्रज्ञा में मुकुर-सम चैतन्य जड़ भी,
सदा ध्रौव्योत्पादस्थितियुत सभी साथ झलकें।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-विधाता तरणि ज्यों,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों॥

जिनके केवलज्ञान-रूपी दर्पण में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—त्रिविध रूप से युक्त अनन्तानन्त जीव और अजीव पदार्थ एक साथ झलकते रहते हैं; जो सूर्य के समान जगत् के साक्षी हैं और सत्य मार्ग का प्रकाश करने वाले हैं, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

टिप्पणी—संसार का प्रत्येक जड़ और चेतन पदार्थ पर्याय की अपेक्षा से उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, परन्तु मूल द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुव = स्थिर रहता है। कुण्डल तोड़ कर कंगन बनाते समय स्वर्ण कुंडल पर्याय के रूप में नष्ट होता है, कंगन पर्याय के रूप में उत्पन्न होता है, परन्तु वह स्वर्णरूप मूल द्रव्य के रूप में ध्रुव ही रहता है। इसी प्रकार चैतन्य आत्मा भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप से युक्त है। मनुष्य आदि भव को त्याग कर जब देव आदि भव धारण करता है, तो आत्मा मनुष्य के रूप में नष्ट होता है, देव रूप में उत्पन्न होता है, परन्तु आत्मारूप में ध्रुव रहता है।

यहाँ स्तुतिकार का यह अभिप्राय है कि भगवान के ज्ञान में पदार्थ केवल वर्तमान रूप से ही प्रतिबिम्बित नहीं होते, प्रत्युत भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी रूपों में झलका करते हैं।

स्तोत्रकार ने 'नयन पथगामी' शब्द बड़ा ही भक्तिपूर्ण दिया है। भक्त की आँखों में भगवान का रूप ही समाया रहना चाहिए। और जब नेत्रों में हमेशा भगवान ही रहेंगे, तो फिर संसारी भोग-विलासों को वहाँ स्थान ही कहाँ रहेगा ?

सामूहिक रूप में जब इस स्तोत्र को एक साथ पढ़ें, तब तो 'भवतु नः' कहना चाहिए। यदि कोई एक ही पढ़ने वाला हो तो 'भवतु मे' पढ़ना ठीक है।

: २ :

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्दरहितं,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी याति विमला,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः॥

जिन्होंकी नेत्राभा अचल, अरुणाई-रहित हो,
सुझाती भक्तों को हृदयगत कोपादि-शमता।
विशुद्धा सौम्या आकृति अमित ही भव्य लगती,
महावीर स्वामी नयन - पथ-गामी सतत हों॥

जिनके लालिमा से रहित अचंचल नेत्र-कमल, दर्शक जनता को, अन्तर्हृदय के क्रोधाभाव की अर्थात् समभाव की सूचना देते हैं, जिनकी ध्यानावस्थित प्रशान्त वीतराग-मुद्रा अतीव शुद्ध एवं पवित्र मालूम होती है, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

टिप्पणी—आँखों के लाल और चंचल होने में मनुष्य के मन का क्रोध ही कारण बनता है। अस्तु भगवान की आँखों का लाल और चंचल न होना सूचित करता था कि भगवान महावीर स्वामी क्रोध के आवेश से सर्वथा रहित हैं, पूर्णरूप से शान्त हैं। जब कारण ही नहीं, तो कार्य कैसा ?

: ३ :

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवतिजलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

नमस्कर्ता इन्द्र-प्रभृति अमरों के मुकुट की,
प्रभा श्रीपादाम्भोरुह-युगल-मध्ये झलकती ।
भव-ज्वालाओं का शमन करते वे स्मरण से,
महावीर स्वामी नयन-पथ गामी सतत हों ॥

जिनके चरण-कमल, नमस्कार करते हुए इन्द्रों के मुकुटों की मणियों के प्रभापुंज से व्याप्त हैं, और जो स्मरणमात्र से संसारी जीवों की भवज्वाला को जलधारा के समान पूर्ण रूप से शांत कर देते हैं, वे भगवान महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें ।

: ४ :

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा?
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु नः॥

जिन्हों की अर्चा से मुदित-मन हो दर्दुर कभी,
हुआ था स्वर्गी तत्क्षण सुगुण-धारी अति सुखी।
शिवश्री के भागी यदि सुजन हों तो अति कहाँ,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों॥

भला जिनकी साधारण-सी स्तुति के प्रभाव से जब नन्दन मैंढक जैसे तुच्छ भक्त भी, क्षणभर में, प्रसन्न-चित्त होकर अनेकानेक सद्गुणों से समृद्ध, सुख के निधि स्वर्गवासी देवता बन जाते हैं, तब यदि भक्त-शिरोमणि मानव मोक्ष का अजर-अमर आनन्द प्राप्त कर लें, तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का? इस प्रकार परम दयालु भगवान महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

: ५ :

कनत्स्वर्णाभासो-ऽप्यपगततनुर् ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुतगतिर्
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु नः॥

तपे सोने-जैसे तनु-रहित भी ज्ञान-गृह हैं,
अकेले नाना भी जनि-रहित सिद्धार्थ-सुत हैं।
महाश्री के धारी विगत-भव-रागी अति-गति,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों॥

जो तप्त स्वर्ण के समान उज्ज्वल कान्तिमान् होते हुए भी अपगत तनु—शरीर के मोह से रहित थे, ज्ञान के पुंज थे, विचित्र आत्मा—विलक्षण आत्मा होते हुए भी एक—अद्वितीय थे, राजा सिद्धार्थ के पुत्र होते हुए भी अजन्मा—जन्म रहित थे, श्रीमान्—शोभावान होते हुए भी संसार के राग से रहित थे अद्भुत ज्ञानी थे, वे भगवान महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद्य में विरोधाभास अलंकार है। विरोधाभास का अर्थ है—दो बातों में भले ही ऊपर से परस्पर विरोध

दिखाई देता हो, परन्तु वास्तव में विरोध न हो। उदाहरण के लिए विहारी का दोहा देखिए—

"तंत्रीनाद कबित्तरस सरस राग-रति रंग।
अन-बूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥"

उपर्युक्त दोहे के — 'अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग"— वाले उत्तरार्द्ध में विरोधाभास अलंकार है। अनबूड़े का अर्थ है—नहीं डूबा हुआ, और बूड़े का अर्थ है—'डूबा हुआ।' अब परस्पर विरोध है कि—जो डूबा हुआ नहीं है, वह डूबा हुआ कैसे हो सकता है ? दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। विरोध का परिहार दूसरे अर्थ के द्वारा किया जा सकता है। अन बूड़े का अर्थ है—'नहीं डूबा हुआ' और बूड़े का अर्थ है—'नष्ट हो जाना।' अर्थात् जो लोग तंत्री-नाद कवित्त-रस आदि में डूबे नहीं हैं, पूर्णरूप से निमग्न नहीं हैं, केवल मामूली ऊपर से दखल रखकर अभिमान करते हैं, वे डूब जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार जो सब अङ्ग से बूड़े हैं अर्थात् डूबे हुए हैं, वे तरे हुए कैसे हो सकते हैं ? यहाँ पर भी बूड़े का अर्थ पूर्णतया निमग्न अर्थात् तन्मय होना है, और तरे का अर्थ तरना-श्रेष्ठ होना है। अभिप्राय यह है कि जो तंत्रीनाद आदि में सब प्रकार से डूबे हुए हैं, निमग्न हैं, वे तर जाते हैं, सफल एवं श्रेष्ठ हो जाते हैं। अब आप समझ गए होंगे कि विरोधाभास अलंकार क्या है ?

हाँ, तो प्रस्तुत श्लोक में भी इसी प्रकार चार स्थान पर विरोधाभास अलंकार है—

भगवान तप्त स्वर्ण के समान कान्तिवाले हैं, फिर वे अपगततनु कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि अपगततनु का अर्थ है—'शरीर से रहित।' भला शरीर ही नहीं, तो उसकी स्वर्ण के समान कांति कहाँ से होगी ? यह विरोध है। परिहार के लिए अपगततनु का अर्थ शरीर रहित न लेकर, कृश शरीर लिया जाता है। भगवान उग्र और दीर्घ तप करते-करते कृश शरीर हो गए थे, फिर भी तपस्तेज के कारण उनका शरीर तप्त स्वर्ण के समान देदीप्यमान था। अथवा अपगततनु का अर्थ शरीर-रहित भी लिया जा सकता है और इस विरोध का परिहार शुद्ध निश्चय दृष्टि के द्वारा किया जा सकता है ! भगवान शुद्ध द्रव्य दृष्टि से केवल आत्मा ही थे, शरीर की मोह-माया से सर्वथा रहित थे। जैसे वैदिक-साहित्य में जनक राजा को मोह-रहित होने के कारण शरीर के होते हुए भी विदेह—देहरहित कहा जाता था, वैसे यहाँ पर भी विरोध-परिहार कर लेना चाहिए।

विचित्रात्मा का अर्थ होता है —'अनेक' और एक का अर्थ है, 'एक'। अब प्रश्न है कि जब भगवान विचित्रात्मा हैं—अनेक हैं फिर भी एक कैसे हो सकते हैं ? 'विरोध-परिहार के लिए विचित्रात्मा का अर्थ 'अनेक' न लेकर 'विलक्षण आत्मा' अर्थ लेना चाहिए, और 'एक' का अर्थ 'अद्वितीय'। अब विरोध

नहीं रहा, क्योंकि भगवान अपने युग में एक अर्थात् अद्वितीय महापुरुष थे। दूसरा उन जैसा विलक्षण-असाधारण, बेजोड़ महापुरुष कौन था ? कोई भी नहीं।

३. भगवान जब राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे, तो फिर अजन्मा कैसे हो सकते हैं ? अजन्मा का अर्थ है—जन्म नहीं लेने वाला। विरोध-परिहार के लिए यों समझा जा सकता है कि भगवान ने राजा सिद्धार्थ के यहाँ पुत्र-रूप में जन्म अवश्य लिया, परन्तु बाद में साधना के द्वारा अजर-अमर अजन्मा हो गए। बताइए, भगवान मोक्ष में चले गए, फिर जन्म कहाँ लिया ? अजन्मा हो गए न ! अथवा राजा सिद्धार्थ के यहाँ जन्म, पर्याय-दृष्टि या व्यवहार दृष्टि से था। निश्चय दृष्टि से तो भगवान आत्म-स्वरूप ही थे। और आत्मा कभी जन्म लेता नहीं। आत्मा तो अनादि-अनन्त है, अजन्मा है।

४. भगवान श्रीमान् होते हुए भी भव के राग से रहित थे। भला जो श्रीमान्—धनवान् होगा, वह संसार के राग से रहित कैसे होगा ? श्रीमान का और वीतराग का विरोध है। विरोध-परिहार के लिए श्रीमान् का अर्थ धनवान न लेकर शोभावान् करना चाहिए। भगवान की वीतराग-विभूति ही तो उनकी सबसे बड़ी शोभा है।

: ६ :

यदीया वाग्गंगा विविध नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजन—मरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः॥

जिन्हों की वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
न्हिलाती भक्तों को विमल अति सद् ज्ञान जल से।
अभी भी सेते हैं बुध–जन महाहंस जिसको,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों॥

जिनकी वाणी की गंगा विविध प्रकार के नयों की अर्थात् वचन-पद्धतियों की तरंगों से विमल है, अपने अपार ज्ञान जल से अखिल विश्व की संतप्त जनता को स्नान कराकर शांति देती है–भव-ताप हरती है, आज भी बड़े-बड़े विद्वान्रूपी हंसों द्वारा सेवित है, वे भगवान महावीर स्वामी हमारे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें।

: ७ :

अनिर्वारोद्रेकस् त्रिभुवनजयी कामसुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशमपदराज्याय स जिनः,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

त्रिलोकी का जेता मदन भट जो दुर्जय महा,
युवावस्था में भी विदलित किया ध्यान-बल से ।
महा–नित्यानन्द–प्रशम पद पाया जिन-पति,
महावीर स्वामी नयन-पथ–गामी सतत हों ॥

संसार में कामरूपी योद्धा कितना अधिक विकट है ? वह त्रिभुवन को जीतने वाला है, उसके वेग को महान् से महान् शूरवीर भी नहीं रोक सकते । परन्तु जिन्होंने अपने आध्यात्मिक बल के द्वारा, उस दुर्दान्त कामदेव को भी नित्यानन्द - स्वरूप **प्रशम पद** के राज्य की प्राप्ति के लिए, भरपूर यौवन अवस्था में पराजित किया, वे भगवान महावीर स्वामी हमारे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें ।

: ८ :

महामोहातंक-प्रशमनपराऽऽकस्मिक—भिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गल—करः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः॥

महा - मोहातंक - प्रशम करने में भिषग हैं,
निरापेक्षी बन्धु, प्रथित जगकल्याण–कर हैं।
सहारा भक्तों के भवभय-भृतों के, वर गुणी,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी सतत हों॥

जो मोहरूपी भयंकर रोग को नष्ट करने के लिए जनता के आकस्मिक वैद्य बनकर आए थे, जो विश्व के निःस्वार्थ बन्धु थे, जिनका यश त्रिभुवन में सर्व विदित था, जो जगत् का मंगल करनेवाले थे, जो संसार से भयभीत भक्त जनों को एक मात्र शरण देने वाले थे, जो एक से एक उत्तम गुणों के धारक थे; वे भगवान् महावीर स्वामी हमारे नयन - पथ पर सदा विराजमान रहें।

उपसंहार

महावीराष्टकं स्तोत्रं,
भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि,
स याति परमां गतिम्॥

भगवान महावीर का यह आठ श्लोकों वाला स्तोत्र, भागचन्द्र ने बड़ी भक्ति के साथ बनाया है। जो साधक इस स्तोत्र को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह परम गति को प्राप्त करेगा।

श्री महावीर - स्तोत्र

सकल - शक्र - समाज - सुपूजितं,
सकल - संयति - संतति - संस्तुतम् ।
विमल - शील - विभूषण - भूषितं,
भजत तं प्रथितं त्रिशला - सुतम् ॥१॥

कलिल - कानन - भंजन - कुंजरं,
शिव - सरोरुह - संचयशंवरम् ।
कुगति - पंकजिनी - रजनी - करं,
भजत तं प्रथितं त्रिशला - सुतम् ॥२॥

कुमति - वादि - दिवान्ध - दिवाकर,
कुटिल - काम - कुरंग--वनेश्वरम्--
सुखद - शान्त - सुधारस - सागरं,
भजत तं प्रथितं त्रिशला - सुतम् ॥३॥

रुचिर - राज्यसुखं भविनां कृते,
द्रुततरं परिहृत्य च येन सा ।
भगवता यतिता सुतता धृता,
भजत तं प्रथितं त्रिशला - सुतम् ॥४॥

अधम - यज्ञभवं पशु - हिंसनं,
निज - सुदेशनया विनिवारितम् ।
क्षितितलेऽत्र दया सुविसारिता,
भजत तं प्रथितं त्रिशला-सुतम् ॥५॥

सरल - सत्य - पथे सुमनोहरे,
विचलिता जनता विनियोजिता ।
खल - दलं सकलं सरलोकृतम्,
भजत तं प्रथितं त्रिशला-सुतम् ॥६॥

अहह ! शूद्र - जनानिह भारते,
व्यदलयन् खलु जात्यभिमानिनः ।
विघटिता कुल-जाति-मदान्धता,
भजत तं प्रथितं त्रिशला-सुतम् ॥७॥

विकच - पंकज - पत्रविलोचनं,
सकल-साधक-वृन्द - विनन्दनम् ।
सघन - विघ्न - घनाघन - भंजनं,
भजत तं प्रथितं त्रिशला-सुतम् ॥८॥

— उपाध्याय अमरमुनि

卐

जयइ जगजीव - जोणी—
वियाणओ, जग - गुरू जगाणंदो ।
जग - नाहो जग - बंधू,
जयइ जगप्पियामहो भगवं ॥१॥

जयइ सुयाणं पभवो,
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥२॥

— नन्दीसूत्र

प्रस्तुत पुस्तक :

महाश्रमण भगवान् महावीर के पञ्चम गणधर आर्य सुधर्मास्वामी ने द्वितीय अंग सूत्रकृतांग सूत्र के छट्ठे अध्ययन में भगवान् महावीर की स्तुति की है। प्रातः प्रार्थना एवं गुण-कीर्तन के रूप में प्रस्तुत वीर-स्तुति बहुत उपयोगी एवं सुन्दर है। पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी द्वारा किया गया हिन्दी पद्यानुवाद और हिन्दी अनुवाद भी बहुत सुन्दर है। इससे प्राकृत गाथाओं का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। और कविश्रीजी द्वारा की गई टिप्पणी आगम के गभीर अर्थ को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में 'वीर-स्तुति' प्रार्थना के लिए अति-उपयोगी है।

३०-८-१९८१ —मुनि समदर्शी, प्रभाकर
वीरायतन राजगृह